International Recognized Double-Blind Peer Reviewed Multidisciplinary Research Journal
Review Of Research
ISSN 2249-894X | Impact Factor : 3.1402 (UIF)
Volume - 4 | Issue -8 | May - 2015 | Available online at www.ror.isrj.org

बदलते भारत की शिक्षा नीति

वीरेन्द्र भारद्वाज
एसोसिएट प्रोफेसर शिवाजी कॉलेज,दिल्ली विश्वविद्यालय

Short Profile :
Virendra Bhardwaj is working as a Associate Professor in Shivaji College, Delhi University

Ikjk'k %

16 मई 2014 को राजनीतिक धरातल पर भारत ने एक नई करवट ली है। कई सौ वर्षों के बाद भारतीय चेतना पूर्ण शक्ति के साथ उठ खड़ी हुई है। भारत जो विश्वगुरु कहलाता था, जिन नदियों के किनारे देश-दुनिया को जीवन सुखमय बनाने वाले मंत्रों का संधान किया जाता था, नए आविष्कारों, वेद पुराण, आयुर्वेद, संगीत आदि की योजना की जाती थी वहीं कालांतर में मुस्लिम आक्रमणकारियों और अंग्रेजों की स्वार्थी, दमनकारी नीतियों की वजह से लगातार पीछे ढ़केल दिया गया। आजादी के बाद स्कूलों से लेकर उच्च शिक्षा क्षेत्र की शिक्षा नीति कुछ इस प्रकार गढ़ दी गई कि आज बेहतर समाज-निर्माण मानवीय संवेदनाओं का विकास अथवा रोजगार सभी क्षेत्रों में लगभग निराशा का वातावरण दिखाई देने लगा है।

Article Indexed in :
DOAJ Google Scholar DRJI
BASE EBSCO Open J-Gate

i:Lrkouk

पिछले बीस-तीस वर्षों में ग्लोबलाइजेशन, बाजार और कम्प्यूटर टेक्नोलॉजी के विकास ने सारी दुनिया को चमत्कारिक रूप में एक ऐसे प्लेटफॉर्म पर ला खड़ा किया है जहाँ वर्चस्व की लड़ाई हथियारों की अपेक्षा बौद्धिक स्तर पर अधिक लड़ी जा रही है। मैकाले ने तत्कालीन गुलाम भारत के संदर्भ में बहुत पहले कहा था कि भारत की शिक्षा नीति में वह कुछ ऐसे तत्व डालना चाहता था जिनकी वजह से यदि कभी भारत भविष्य में ब्रिटेन से राजनीतिक प्रशासनिक तौर पर आजाद हो भी जाए (जो कि पंद्रह अगस्त 1947 को हुआ भी) तो भी भारत का पढ़ा-लिखा जनमानस सदैव अंग्रेजो का गुलाम होने में स्वयं को गौरवान्वित करे, मैकाले की इस भारत विरोधी शिक्षा नीति को सबसे प्रभावशाली ढ़ंग से भारतीय कम्यूनिस्टों ने समझा। उन्होंने आजादी के बाद कॉग्रेसी नेतृत्व की छाया में वामपंथी मार्क्सवादी चिंतन से आप्लावित ऐसी शिक्षा नीति भारत में लागू की जिसके माध्यम से भारतीय मनीषा यह समझे कि भारत की अपनी समृद्ध परंपरा एक अंधविश्वास का बंडल है और आज हम जो कुछ जितने कुछ भी योग्य बने हैं उसके लिये हमें यूरोप और अन्य विदेशियों का आभारी होना चाहिये। आजादी के बाद भारतीय शिक्षा नीति की वर्तमान दुर्दशा और उसके कष्टदायी परिणामों में भारतीय कम्यूनिस्टों के योगदान पर राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों में स्वतंत्र शोध की संभावना पर विचार होना चाहिये।

वर्तमान शिक्षा-नीति कोठारी कमीशन और राजीव गाँधी सरकार की राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर आधारित है। यहाँ उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति का ढ़ाँचा 10+2+3+2(स्कूल+उच्च शिक्षा) नीति पर आधारित है। 10+2 तक स्कूली शिक्षा और 12+3+2 के अंतर्गत तीन वर्षीय स्नातक, 2 वर्षीय स्नातकोत्तर के रूप में समझा जा सकता है। स्कूल स्तर पर प्राथमिक, सैकेन्डरी, हायर सैकेन्डरी की अवधारणा है। भारत की वर्तमान शिक्षा नीति में अपने स्कूल स्तर पर लगभग 50 प्रतिशत से कम छात्र 10+2 तक की स्कूली शिक्षा पूरी कर पाते हैं। यह ड्रॉप आउट छात्राओं में और भी अधिक चिंताजनक है। जितने छात्र-छात्राएँ 10+2 तक शिक्षा पूरी भी करते हैं वे भी अपने को किसी रोज़गार की चुनौती के सम्मुख तो एकदम बौना पाते ही हैं, एक बेहतर नागरिक होने की कसौटी पर भी कम ही खरे उतरे हैं। ज्ञान-तर्क-उत्सुकता और विवेचन-विश्लेषण की बात तो छोड़ ही दीजिए। वर्तमान में बार-बार कहा जाता है कि परिस्थितियों के अद्भुत संयोग से भारत आने वाले वर्षों में विश्व का सर्वाधिक युवा जनसंख्या वाला देश होगा। अर्थात् भारत में अन्य देशों के मुकाबले युवा लोगों की आबादी काफी अधिक होगी। इस रूप में भारत युवाओं के सपनों का भारत होना चाहिये। युवा छात्र-छात्राएँ ऐसी शिक्षा नीति के अंतर्गत ही अपना विकास कर पाएँगे, जहाँ पर हर हाथ को काम होगा, प्रत्येक मन के अपने सपने होंगे, परस्पर सहयोग और सहअस्तित्व होगा। युवा लोग न केवल खुद के जीवन को सुधारेंगे बल्कि औरों के लिये भी सच्चे सहायक होंगे। भारतीय समाज अमीरी-गरीबी, जाति-पाति से बुरी तरह से जूझता समाज है। हर स्तर पर एक कश्मकश है, आगे बढ़ने की ललक है, विकास की नयी ऊँचाइयों को छूते मंगलयान हैं, सारी दुनिया को इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी का

पाठ पढ़ाते भारतीय इन्जीनियर हैं और रोटी-पानी जैसी जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं से महरूम एक खुला आसमान ताकती बहुतबड़ी आबादी है।

शिक्षा नीति को लेकर कुछ आधारभूत तथ्य हैं। सारी दुनिया की अनेक रिसर्च इस बात को स्थापित कर चुकी हैं कि प्राथमिक शिक्षा का माध्यम छात्र की मातृभाषाही होनी चाहिए। मातृभाषा में ही छात्र का शुरुआती विकास अधिक गहरा और व्यापक होता है। किसी मजबूत नींव पर ही बुलंद इमारत खड़ी की जा सकती है। स्कूल और शिक्षक ख़ौफ़ पैदा करने वाले प्रतीक न बनें। छात्रों के लिये 'रिक्रिएशन ' , खेल-खेल में शिक्षा पर जोर रहे। प्री-प्राइमरी (नर्सरी, के.जी) जैसे शिक्षा संस्थान मेरी नज़र में बचपन पर अनावश्यक बोझ हैं। बच्चों के स्वाभाविक विकास में बाधक हैं। पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चे सबसे सुरक्षित, संस्कारित अपने परिवार के पास ही होते हैं, अन्यत्र उनकी हालत शीशे के कवर में कैद खिलती कलियों जैसी ही होती है। सरकारी स्तर पर यह निश्चित किया जाए कि प्राथमिक स्तर पर कोई भी बच्चा किसी भी हालत में अपनी पढ़ाई न छोड़े। प्राथमिक स्तर की पाठ्यपुस्तकें हमारी संस्कृति, प्रकृति, समाज इतिहास और वर्तमान के संदर्भों को रोचक ढ़ंग से बच्चों के सामने प्रस्तुत करें। माता-पिता, राष्ट्र और संस्कृति की चमक बच्चों में आत्मविश्वास पैदा करेगी। खेल और योग शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा रहे। माध्यमिक स्तर पर समाज – इतिहास, संस्कृति, जिज्ञासा, तर्क और मूल्यों की योजना छात्रों के सम्मुख रहे। हर छात्र अपनी-अपनी स्किल और रुचि के अनुसार आठवीं के बाद किसी न किसी हुनर की शिक्षा ले। अर्थात् स्किल डवलपमेंट इस स्तर पर स्कूली पाठ्यक्रम का अनिवार्य हिस्सा बने। छात्रों में अपने राष्ट्र, उसकी प्रकृति-पर्यावरण, समाज और मूल्यों के प्रति सम्मान और लगाव का भाव जागृतहो सके। छात्रों में तर्क विश्लेषण और विवेक का विकास हो, जिज्ञासा और प्रस्तुतिकरण को बढ़ावा मिले। बस्ते का बोझ न बढ़ाएँ। खेल, योग और सांस्कृतिक गतिविधियाँ हर छात्र की दिनचर्या का हिस्सा बनें। दसवीं के बाद छात्र अपनी रुचि और स्किल के आधार पर अपने आगामी अध्ययन हेतु विषयों का चुनाव कर सकें। 11-12वीं की कक्षा में छात्रों को अनिवार्य रूप से आर्ट्स, कॉमर्स खण्डों में न बाँटा जाए। सभी छात्रों को साइंस, आर्ट्स, कॉमर्स के कॉम्बिनेशन से पेपर लेने की छूट रहे। स्किल, योग और पर्यावरण तथा भाषा-साहित्य के पाठ्यक्रम चाहें क्वालीफाइंग स्तर पर रहें पर छात्रों के अध्ययन के विषय होने चाहिये। भारत के विश्वविद्यालयों से शिक्षण-प्रशिक्षण और शोध के क्षेत्रों में दुनिया के सामने नए आयाम खुलने चाहिए। आज की परंपरागत विश्वविद्यालयी और कॉलेजों की शिक्षा एक ठहरे हुए पानी की तरह से हो गयी है। जल्दी ही यदि इसे प्रवाहमान नहीं बनाया गया तो इसके सड़ने का खतरा पैदा हो जाएगा तक्षशिला, नालन्दा की विरासत वाले देश का यदि एक भी विश्वविद्यालय टॉप 200 विश्वविद्यालयों की श्रेणी में जगह नहीं पाता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि विश्वविद्यालयों में शैक्षणिक गतिविधियाँ समय की डोर से जुड़ी हुई नहीं हैं। स्नातक स्तर पर ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता है जहाँ पर देश के किसी भी कोने से स्कूली शिक्षा पूरी करके आने वाले छात्र स्वयं को समानता के

एक धरातल पर समझें। पाठ्यक्रम राष्ट्र की अस्मिता, गरिमा और आकांक्षा के अनुरूप होने चाहिए। जीवन और समाज को जोड़ने वाले होने चाहिएँ। भारत सामाजिक और सांस्कृतिक विविधताओं से भरा राष्ट्र है। अभी तक की विश्वविद्यालयी शिक्षा विविधताओं को विभिन्नताओं के रूप में खण्ड-खण्ड करके खंडित करने वाली सोच पैदा करती है। सारे भारत में तोड़ने के नहीं, जोड़ने के बिन्दुओं को शिक्षा व्यवस्था का मूल आधार होना चाहिये। राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता बढ़ेगी तो विश्वविद्यालयों से नक्सलवादी, अलगाववादी चिंतन अपने आप ही अलग-थलग पड़ जाएगा।

पाठ्यक्रम मूल विषय के साथ अन्य विषयों का भी ज्ञान देने वाला होना चाहिए। जीवन एकांगी नहीं, बहुपक्षीय है। इसलिये मल्टीडिसिप्लीनरी (अंतर अनुशासन) आवश्यक है। कुछ पाठ्यक्रम छात्र के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास हेतु आधारभूत रूप में मौजूद रहने चाहिएँ। भाषा, संस्कृति, पर्यावरण टैक्नोलॉजी जैसे विषय पढ़ने के अवसर सभी को मिलने चाहिए। एक बार किसी कारण से शैक्षणिक रूप से पिछड़ने के बावजूद छात्र को फिर से मुख्यधारा में लौटने अथवा अपग्रेड करने का अवसर रहे। स्नातक छात्र आवश्यक रूप से किसी न किसी स्किल में प्रवीण हो सके। यह स्किल उसके मुख्य कोर्स से भी जुड़ी हो सकती है और अन्य रुचिकर क्षेत्र से भी। भारतीय विश्वविद्यालयों में बदलते भारत की तस्वीर तब तक स्पष्ट नहीं होगी जब तक विश्वविद्यालयों को शोध के क्षेत्र में नया करने की आजादी नहीं होगी। विश्वविद्यालय अपने मूल चरित्र में प्रयोगधर्मी होते हैं, होने चाहिएँ। स्वायत्तता और प्रयोगधर्मिता में जितना अन्योनाश्रित संबंध है उतना ही संस्थाओं की स्वायत्तता और सरकार में बैर होता है। सरकारी दखल और कट्टर राजनीतिक विचारधाराओं के दुराग्रह ने भारतीय विश्वविद्यालयों को शोध और समाज के क्षेत्र में आगे बढ़ने से सदैव रोका है। पाठ्यक्रमों का समयानुसार नवीनीकरण और शिक्षकों का प्रशिक्षण अनिवार्य होना चाहिए। शिक्षक संगठनों को भी बदलते भारत की माँग, संवेदनशील समाज, सम्मानित अनुशासित नागरिक, औद्योगिक विकास में सहयोगी शिक्षा, नवोन्मेषी नीति-निर्धारण, शोधोन्मुखी और तकनीकी रोजगारपरक शिक्षा व्यवस्था की रचना करने में अपनी विचारधाराओं के बंधनों से ऊपर उठकर सोचने की जरूरत है। इस समय अपनी विशिष्ट भौगोलिक, आर्थिक, राजनीतिक सांस्कृतिक और विशेषकर युवा-आबादी की दृष्टि से पूरे विश्व की निगाहें भारत की ओर लगी हुईहैं।

स्पष्टतः शिक्षा नीति के संदर्भ में प्रमुखतः तीन 'स्टेक होल्डर ' है, छात्र कर्मचारी और शिक्षक। शिक्षा नीति का अंतिम लक्ष्य छात्र का बहुमुखी विकास होना चाहिए अर्थात शिक्षा नीति के केंद्र में छात्र हैं। अच्छा प्रतिभावान शिक्षक अनेक बार छात्रों के विषय के प्रति विशेष रुचि पैदा कर उनका उत्साह बढाता है। जबकि भ्रमित, कुंठित-हताश शिक्षक अपने छात्रों में विषय के प्रति अरुचि पैदा कर उसे राह से भटका सकता है। कर्मचारी सहयोगी की भूमिका में होते हैं। छात्रों के रूप में जितनी बड़ी युवा आबादी भारत में मौजूद है, उसी अनुपात में शिक्षण संस्थाओं का निर्माण समय की माँग है। शिक्षण संस्थाएँ खोलने का मकसद पूंजी व्यापार को बढ़ाने की

अपेक्षा राष्ट्र निर्माण के महत्ती उद्देश्य से प्रेरित होना चाहिये। शिक्षण संस्थाओं में उपलब्ध बुनियादी ढाँचा, समानता की बुनियादी शर्त होता है जबकि आज सरकारी और प्राइवेट शिक्षण संस्थाओं के बुनियादी ढ़ाँचे में ज़मीन आसमान का अंतर है। त्रासदी यह है कि इस समुद्री खाई को पाटने के नाम पर और अधिक गहरा खोदा जा रहा है। शिक्षण संस्थाओं का माहौल उत्साहपूर्ण, नवोन्मेषी और समावेशी होना चाहिये ताकि ये संस्थाएँ बेरोजगार, असंतुष्ट, हताश, युवाओं की अराजकतावादी फौज खड़ी करने की फैक्ट्री न होकर नयी सोच और नए स्वप्नों की उड़ान भरने वाली संस्थाओं के रूप में उभर सकें।